1. System approach (system theory)

अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में व्यवस्था सिद्धांत काफी लोकप्रिय है। इसका जन्म व्यवहारवादी क्रांति के फलस्वरूप हुआ इसलिए इसे व्यवहारवादी उपागम का एक विशिष्ट उपागम माना जाता है। जे० एन० रोजेनॉ ने लिखा है कि "अन्तरराष्ट्रीय गतिविधियों के अध्ययन में जो नवीनतम प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं, उनमें से संभवतः सबसे अधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति पूरे अन्तरराष्ट्रीय जगत को व्यवस्था मानकर चलने की है"। इस प्रवृत्ति का मूल आधार अन्तःराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवहार को भौतिक शास्त्र और जीव विज्ञान की स्पष्ट एवं संकल्पनाओं के आधार पर समझने का प्रयत्न करना है। व्यवस्था उपागम की मूल मान्यता है कि एक विशिष्ट पर्यावरण में यह एक व्यवस्था है, जिसकी स्पष्ट व्याख्या की जा सकती है, और जिसकी संरचना हुई है। परस्पर क्रिया करने वाले अंगों से हुई है। ~~...~~ परस्पर निर्भरता व्यवस्था को संचालित करती ~~...~~ इस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय जगत उसी प्रकार की सम्भव हुई है। जिस प्रकार जीव विज्ञान प्राणी मात्र की संरचना को सावयव इकाई मानकर चलता है, जिसमें सभी अंगों के परस्पर समन्वय होते हैं। सावयव इकाई सरल से जटिल अनिश्चित से निश्चित आकार, आत्म-निर्भरता से सामाजिक निर्भरता और पृथक्करण से सशक्तीकरण की ओर बढ़ती है। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में व्यवस्था उपागम को लोकप्रिय करने में Morton Kaplan का विशेष हाथ है। कॉपलान के अनुसार सिद्धांत का मुख्य कार्य विभिन्न सामाजिक कार्यों विज्ञानों की निश्चित अवधारणा को राजनीति में प्रयोग करना। मूलतः दो विभिन्न संरचनाओं में समानता और विभिन्नता को ढूँढ निकालना। जैसे राज्य और शरीर दो मूलतः भिन्न संरचनाओं में समानता और विभिन्न

Scanned with CamScanner

था। शरीर के रूप में राज्य का विवेचन इसलिए पीयर ने अंतर्राष्ट्रीय के व्यवस्था सिद्धान्त में किया है। व्यवस्था सिद्धान्त में अन्तर्राष्ट्रीय जगत को जीव विज्ञान के आधार पर सावयव इकाई मानकर चलना है या चला आता है। व्यवस्था सिद्धान्त के लेखकों का विचार है कि जिस प्रकार भौतिक शास्त्रों में भविष्य कथन किये जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी प्रयत्न किया जाता है और गणित में जिस प्रकार मानकीकरण का व्यवस्था है, उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय जगत की भी विवेचना की जा सकती है।

"व्यवस्था सिद्धान्त की निम्न विशेषताएँ"

विशिष्ट संरचना ·

व्यवस्था सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यवस्था की एक विशिष्ट संरचना होती है, और उसके संचालन की एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है। इस संचालन के अंगों विकास तथा परस्पर निर्भरता के स्पष्ट नियम होते हैं, जिनसे व्यवस्था संचालित होती है। अपनी विशिष्ट प्रक्रिया से ~~वह व्यवस्था~~ पोषित और परिवर्धित होती है और अपना स्वरूप बदलती है। व्यवस्था की मुख्य विशेषता उसकी परिवर्तनशीलता है। यही परिवर्तन विकासवादी है। यह परिवर्तन बाह्य न होकर यदि व्यवस्था के विभिन्न अंगों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप आंतरिक ही होता है।

2. परिवर्तनशीलता ·

व्यवस्था परिवर्तनशील होती है, उसका परिवर्तन धीमा हो सकता है अथवा तेज। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उसके अंग, राष्ट्र, राज्य एक दूसरे से परस्पर क्रिया, प्रतिक्रिया से संबंध होते हैं। युद्ध, विजय, क्रांतियाँ, शांतिपूर्ण परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और तकनीकि परिवर्तन, निरंतर इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के परस्पर

संबधों के ताने - बाने बनते रहते हैं, और इसके स्वरुप को विकसित करते रहते हैं।

(iii) क्रियाशील एवं गतिमान व्यवस्था -

अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था मुख्य तथा एक गतिमान व्यवस्था है। और विशिष्ट काल में उसका विशिष्ट रूप होता है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर का क्रम बचपन से किशोरावस्था, यौवन और बुढापा आती है, यदि एक व्यवस्था के समक्ष तत्व समान रूप से विकसित होते हैं, तो यह समक्ष विकास होता है। जैसे मानव में एक ही विशिष्ट अंग का बढ़ना रोग के लक्षण हैं, वैसे ही अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में एक राज्य का शक्तिशाली होना, युद्ध के लक्षण को दर्शाता है। जिस प्रकार एक शरीर में बहुत अधिक असंतुलन हो जाता है तो उसे ठीक करने के लिए ज्वर तीव्र रूप से शरीर में होते हैं, उसी प्रकार राज्यों में जब गहरे असंतुलन होते हैं, तो क्रिया होती है और उसके उपरांत नया स्वस्थ संतुलन स्थापित हो जाता है। संक्षेप में Morton Kaplan ने अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था विश्लेषण को जिस विज्ञान की व्यवस्था के रूप में करने का प्रयत्न किया है।

2. तुल्यभारता -

प्रत्येक व्यवस्था में तुल्यभारता का रहना आवश्यक है। तुल्यभारता रहते हुए ही निरंतर परिवर्तन और विकास होता है। तुल्यभारता के अनुसार व्यवस्था के घटक राज्य निरंतर आंतरिक रूप से परिवर्तित होते रहते हैं, जिससे एक निश्चित स्थिति बनी रहे।

४. राष्ट्र अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के विशिष्ट घटक -

प्रत्येक व्यवस्था के अपने विशिष्ट घटक होते है, और इन संघटक तत्वों के अपने विशिष्ट नियम होते है। अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्र, राज्य मुख्य संघटक इकाइयाँ है। उनके निर्माण, विकास और परस्पर क्रिया के अपने विशिष्ट नियम होते है। यह संघटक इकाइयाँ ही मुख्य अभिनेता होते है, जैसे राष्ट्र, शत्रु राष्ट्र, अन्तरराष्ट्रीय संगठन इत्यादि। प्रत्येक ~~व्यवस्था~~ व्यवस्था में कई स्वायत व्यवस्था भी होती है। सारांश में इस उपागम के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में, राष्ट्र, राज्य आदि कई घटक होते है। ये राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय दोनो ही होते है। जैसे- भारत, रूस, चीन, अमेरिका इसकी राष्ट्रीय उपव्यवस्था है, तो NATO, U.N.O आदि अधिराष्ट्रीय उपव्यवस्थाएँ है।

इस व्यवस्था पद्धति का मुख्य लक्षण है कि राज्यो के परस्पर आचरण तथा व्यवहार को इस व्यवस्था की संरचना और सीमाओं में देखना होगा। व्यवस्था के पर्यावरण ~~का~~ प्रभाव ~~का~~ इन घटक इकाइयो अर्थात राज्यो पर पड़ता है और घटक इकाइयो का क्या प्रभाव व्यवस्था पर पड़ता है, इस प्रतिघात प्रभाव को देखना होगा।

मोर्टन कॉपलान द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था विश्लेषण में कापलान ने अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के छः प्रतिमानो पर विचार किया है, जो निम्नलिखित है।

१.) शक्ति संतुलन व्यवस्था →

शक्ति संतुलन की व्यवस्था मोटा-मोटी तौर पर आज भी वही है जो पाश्चिमी जगत में १८वी तथा १९वी सदियो में मौजुद था। इस व्यवस्था के भीतर काम करने वाले अन्तरराष्ट्रीय कार्यकर्ता भी है।

Scanned with CamScanner

इसी तरह की व्यवस्था मे 5 या 6 आवश्यक कार्यकर्ता होने चाहिए। प्रथम विश्व युद्ध से पहले ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य, इटली और अमेरिका आवश्यक राष्ट्रीय कार्यकर्ता थे। कापलान के अनुसार इस व्यवस्था का परिचालन के छः महत्वपूर्ण नियम हैं।

1. प्रत्येक आवश्यक कार्यकर्ता को बातचीत द्वारा अपनी क्षमता बढ़ाना चाहिए।

2. प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यकर्ता का पहला दायित्व अपने प्रति होना चाहिए।

3. किसी आवश्यक राष्ट्रीय कार्यकर्ता को समाप्त करने के बजाए युद्ध बंद कर देना चाहिए।

4. राष्ट्रीय कार्यकर्ता को ऐसे सम्मेलनों का विरोध करना चाहिए जो शेष निकाय की दृष्टि से सार्वभौमिक प्रधानता की स्थिति ग्रहण कर सकता है।

5. राष्ट्रीय कार्यकर्ता को चाहिए कि वह अन्य कार्यकर्ताओं को अधिराष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के निकाय या व्यवस्था में प्रवेश कर देना चाहिए।

6. शक्ति संतुलन व्यवस्था का सबसे अधिक सामान्य परिवर्तित रूप द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था है। यह परिवर्तन तब होता है, जब दो राष्ट्रीय कार्यकर्ता और उसके सहयोग कार्यकर्ता दो गुटों पर हावी हो जाते हैं। कॉपलान दो प्रकार के द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था की कल्पना की है।

(ii) शिथिल द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था - इसमें दो महाशक्तियों के चारों ओर छोटी शक्तियाँ और तटस्थ राज्यों का समूह घेरा रहता है और। जिसमें तटस्थ राज्यों का एक गुट का होने के कारण दो बड़े कार्यकर्ताओं की शक्ति शिथिल बनी रहती है जैसे रूस और अमेरिका दो महाशक्तियाँ है और निर्गुट राष्ट्र तथा अनेक मित्र राष्ट्र छोटे हैं।

मार्गिया एवं उसका राज्यों का साहल।

iii) द्वि - ध्रुविय व्यवस्था -

इसमें राज्य ध्रुव हो जाते हैं और व्यवस्था केवल दो ध्रुवों के चारों और घुमती है। लेकिन इसके स्थायित्व की गारंटी तभी होगी जब दोनों ध्रुवों के कार्यक्रम पदसोपान रीति से संगठित हो। इस व्यवस्था में गैर सदस्य राष्ट्रीय कार्य-कर्ताओं का वर्ग लुप्त सा हो गया है।

iv) सार्वत्रिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था -

सार्वत्रिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में आवश्यक कार्यकर्ताओं के प्रकार्य विस्तार होने से बन सकती है। इस व्यवस्था में सार्वत्रिक कार्यकर्ताओं में युद्ध होने से रोक सके फिर भी राष्ट्रीय कार्यकर्ता अपना अस्तित्व कायम रखेंगे और अधिकाधिक शक्ति पाने के लिए और भी लगायेंगे। इसमें संगठित व्यवस्था होगी और न्यायिक, आर्थिक और प्रशासनिक कार्य करेंगी राष्ट्रीय कार्यकर्ता अपना उद्देश्य सार्वत्रिक कार्यक्रम के ढांचे के भीतर ही सिद्ध करने की कोशिश करेंगे।

v. सोपानीय अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था.

इसमें एक सार्वत्रिक कार्यकर्ता प्रायः सम्पूर्ण विश्व को समेट लेता है, और केवल एक सम्राट बाहर रह जाता है। यह सोपानीय अंतर-राष्ट्रीय व्यवस्था निर्देशात्मक और गैर अनिर्देशात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है।

vi) इकाई विटो व्यवस्था -

इस व्यवस्था में मौजुद हथियार

ऐसे होते हैं कि कोई भी राष्ट्रीय कार्यकर्ता स्वयं नष्ट होने से पहले किसी दूसरों को नष्ट कर सकता है। इसलिए हरेक राज्य के अन्य पास अपने प्रतिद्वंदियों को नष्ट करने के बराबर सामर्थ्य होगी। इस तरह की व्यवस्था में कार्यकर्ता केवल राष्ट्र स्तर पर रह सकता है। जबकि अनेक कार्यकर्ता ऐसे कार्य में भागी रह सकते हैं।

→ आलोचना :-

इस सिद्धान्त की निम्न आलोचना की जाती है।

i) अस्पष्टता -

इस उपागम का पहला दोष अस्पष्टता है, इस व्यवस्था के अर्थ पर कोई वास्तविक सहमति नहीं है। व्यवस्था के निश्चित आधार, स्वरूप एवं स्वभाव के बारे में लेखकों ने कोई निश्चित विचार नहीं दिया है। Hall and Fagen के अनुसार व्यवस्था वस्तुओं का समुच्चय एवं वस्तुओं तथा गुणों के आपसी सम्बन्धों का इकट्ठा नाम है। Cherry के अनुसार व्यवस्था एक समष्टि है जो कि बहुत से हिस्से होते हैं।

ii) जटिल अवधारणा -

व्यवस्था सिद्धान्त एक जटिल अवधारणा है। इस पद्धति के परस्पर निर्भरता को कैसे समझा जाए कौन सी प्रक्रिया अधिक महत्वपूर्ण होगी, तथ्यों का प्रयोग कैसे किया जाए, इस प्रश्नों का उत्तर इस उपागम में नहीं है। इस उपागम का प्रयोग करके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नये तथ्यों पर पहुँचने में सफल नहीं हो सकते। उदाहरण के तौर पर हम देखें तो पायेंगे कि कि आज के विश्व में लगभग 215 के आस-पास राजनीतिक इकाइयाँ हैं, इनके आपसी सम्बन्धों की उपव्यवस्था की कल्पना की जाए तो इस व्यवस्था को समझने में काफी जटिलता आ जाएगी।

Scanned with CamScanner

(ii) मॉर्गेन्थाउ द्वारा राष्ट्रीय हित की धारणा में ज्यादा ज़ोर दिया जाना -

मॉर्गेन्थाउ राष्ट्रीय हित की धारणा पर ज्यादा ज़ोर देता है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आदर्शवादी एवं यथार्थवादी विचारकों के विवाद का समाधान करने को प्रयास करता है। इसके लिए वह राष्ट्रीय हित की धारणा की विषय की आलोचना की ओर ध्यान खींचता है। जिसके विषय में उसका कहना है कि उसे राष्ट्रीय मूल्यों की धारणा से अलग नहीं किया जा सकता। लेकिन उसने इस प्रश्न की अवहेलना कर दी है कि राष्ट्रीय हित या राष्ट्रीय मूल्य कैसे बनते हैं और राज्यों के सामूहिक व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।

(v) व्याख्या की अपूर्णता त्रुटि -

राज्यों के व्यवहार के किसी भी सिद्धांत में मूल व्याख्या के तत्वों को भी शामिल रखना चाहिए। मॉर्गेन्थाउ न तो इस बात पर विचार किया है और न उन बातों पर विचार करता है जो राष्ट्रों के भिन्न व्यवहारों का निर्माण तय करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन राज्यों के समूह में व्यवहार का अध्ययन है। इस लिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि उन कारकों पर विचार न करें जिनके कारण राज्य सामूहिक रूप से व्यवहार करते हैं और उस प्रक्रम पर विवाद न करें जिसमें ऐसा सामूहिक व्यवहार रूप ग्रहण करता है।

महत्व और निष्कर्ष -

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तो अमूर्त वर्णात्मक और वैज्ञानिक क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस उपागम का

मतलब इस बात में है कि यह उन आकृतें, विचारों, क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के आधार पर एक खास चित्र का निर्माण करता हो। राष्ट्रों के परस्पर निर्भरता का विश्लेषण करना ही अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का मूल उद्देश्य है, और यह उपागम क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निरंतर प्रगतिशील हो रहा है।

ii) यह उपागम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कई पक्षों पर नया प्रकाश डालता है जैसे परस्पर निर्भरता क्यों होती है, बड़े राज्यों के होते हुए छोटे राज्यों का आचरण संभव कैसे हो पाता है।

iii) यह उपागम बहुत से जटिल समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हुआ है जैसे यह इस प्रश्न का उत्तर देता है कि सर्वशक्ति सम्पन्न राज्य अकेला ही सबको संचालित क्यों नहीं कर पाता है।

iv इस उपागम में कई सामाजिक शास्त्रों की मूल अवधारणाओं का प्रयोग करके अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन अधिक अच्छा होता है। इसलिए अनुसंधान में इसका उपयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है।

अतः सभी दृष्टिकोणों से सोचा जाए तो यह पता चलेगा कि राजनीतिक व्यवस्था या राजनीतिक संबंध में व्यवस्था उपागम का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है।